34.

कुमारविजयम् में भगवान् कार्त्तिकेय

नरोत्तम,
सहायक प्राध्यापक
एम.एल.बी. शा.महा.विद्यालय ग्वालियर

'कुमारविजयम्' नायक प्रधान महाकाव्य है। इस महाकाव्य में नायकत्व भगवान कार्त्तिकेय में विद्यमान है वे दिव्य प्रकृति के धीरोदात्त अनुकूल नायक है।

आचार्य विश्वनाथ ने न्ायक का लक्षण इस प्रकार दिया है–

त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही।

दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजो वैदग्ध्यशीलवान्नेता।।[1]

आचार्य विश्वनाथ द्वारा दिये गये नायक के समस्त लक्षणों से युक्त होने के साथ ही वह कार्त्तिकेय समस्त सात्विक गुणों से भी युक्त है।

अग्नि से उत्पन्न होने के कारण इनका एक नाम गुह भी है। ये अद्भुत सौन्दर्यशाली , पराक्रमी , तेजवान , समस्त कालाओं के ज्ञाता परमब्रह्म स्वरूप तथा प्रजानुरञ्जक हैं। बाल्यावस्था में ही इनका प्रत्येक अंग पुष्ट हो गया , इष्ट मधुकोष की वृद्धि हुई , पूर्ण चन्द्रमा के समान सुशोभित होने लगे।[2]

तस्यालिके स्म स्फुरति प्रभाभिः सौम्याभिरिन्दुश्च तथा यथाऽसौ।

जहार नेत्राणि हठाञ्जनानां निमज्जितानीव सुधासमुद्रे।।[3]

उनके भाल पर प्रभायुक्त ऐसा चन्द्र लक्षित हो रहा था जिसने लोगों के चित्त हठात् हरण कर लिए। उन्हे अनुभव हो रहा था कि जैसे वे सुधा समुद्र में डूब गए हों। उनके उस छरहरे शरीर में यौवन का भराव था। उनकी गात्रयष्टि सरसी थी और उसमें अतुलनीय बडे – बडे विशाल नेत्र खिले कमल थे सभी अंग सौरभ्ययुक्त कमल थे, उन पर आँखो के भौरे अधीर होकर टूटने लगे थे।

उनके अंग कान्ति से अपसारित किये अन्धकार नष्ट नहीं हुए बल्कि स्वर्ग की बालाओं के कामाकुल चित्तों में छिप गए।[4] वह शैशवास्था में ही अपने अदभुत पराक्रम से तारकासुर को विनष्ट कर सभी देवताओं के लिए अभिनन्दनीय हो गये थे।[5]

प्रथमेन मुखेन पार्थिवः स बभूवान्यमुखैश्च शेषभूः।

शिव एव स एष षण्मुखः स हि षष्ठः खलु भूतपंचके।।[6]

कार्त्तिकेय छः मुखधारी हैं , प्रथम मुख पार्थिव तथा शेष पाँच मुख आप्य, तैजस , वायव्य , आकाशीय और आत्मरूप है , समस्त पंचमहाभूत कार्तिकेय में ही समाहित है। कार्त्तिकेय साक्षात! शिव के प्रतिमूर्त्ति है। मनीषिजन उन्हे 'सृति' शब्द से पुकारते थे, बाल्यावस्था में ही देदीप्यमान तेज से युक्त थे। ये समस्त कलाओं के ज्ञाता , अस्त – शस्त्र प्रयोग में निपुण थे। कुशल प्रशिक्षक भी थे इन्होंने देवसेना को अस्त्र – शस्त्र प्रयोग का प्रशिक्षण दिया। देवसेना के साथ परिणय सूत्र में बँधने पर भी उन्होने अपने कुमारता को विद्यमान रखा। चन्द्रमा की ज्योत्स्नामय कला शुक्ल पक्ष में जिस प्रकार दिन – प्रतिदिन बढ़ती थी उसी प्रकार इनका पराक्रम भी

दिनोदिन बढ़ता रहा अल्पसमय में ही इन्होने युद्ध विद्या में कुशलता प्राप्त कर ली।[7] देवसेना के साथ मिलकर समस्त शत्रुओं को क्षणमात्र में विनष्ट कर देते थे।

यस्तारकासुर इति प्रथितः सजीबः
पिण्डोत्तमश्चपलतामुपयाति सृष्टौ।
भस्मासुरस्य गतिमेष गमिष्यते वै
देवेन देवपृतनापतिना गुहेन।।[8]

उन्होने देवसेना के सहयोग से तारकासुर नाम से प्रसिद्ध असुर को भस्मीभूत कर दिया। यद्यपि कार्त्तिकेय शिशु थे फिर भी बड़े – 2 भयानक असुरों से युद्ध करने के लिए मन ही मन ठान लेते थे तथा उनसे निर्भीक होकर युद्ध करवा करते थे, तथा उन्हे पराजित भी करते थे।[9]
शिव जी के पुत्र उस कार्तिकेय ने सर्वप्रथम पृथ्वी पर विजय प्राप्त की तत्पश्चात् जल , अग्नि , वायु पर भी अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया, वे एकमात्र आकाश को जीतने के इच्छुक थे।

पृथ्वीं विजित्य च विजित्य च वारि जित्वा

वह्निं विजित्य च समीरणमेष दिव्यः।

सूनुः शिवस्य चकमेऽम्बरमेकमेव

जेतुं दिशां तनुतलाम्बरमुज्ज्व लांडः।।[10]

उनका शरीर वज्रतुल्य दृढ़ तथा उत्तमोत्तम था , सुधापूरित स्वर्ग में उन्होंने योग साधना के द्वारा उत्कृष्ट सिद्धि प्राप्त कर ली जो कि शत्रुओं के लिए असह्य हो गये। तेजोमय पुंज विद्यमान होने पर भी उन्होने अस्त्र – शस्त्र प्रयोग में निपुणता प्राप्त कर ली उनके अन्तःकरण में विद्यमान तेजोमय पुंज उनके अंगो को प्रकाशित कर रहा था। तेजवान कार्त्तिकेय को देखकर ही शत्रु भाग खड़े होते हैं।

उन्हे शस्त्र का प्रयोग नहीं करना पड़ता क्योंकि सूर्य अन्धकार की हिंसा हाथ में खड्ग त्रिशूल आदि रखकर नहीं करता। अपूर्व चमत्कृति युक्त शौर्य ने इनके शरीर को पूर्ण बनाया।[11]

स्कन्दस्य तस्य विततेऽलिकचत्वरे यज्

जागर्त्ति किंचन महः क्षमते तदेव।

शत्रून् समानपि दृशैव विहन्तुमेतान्

कस्तारकासुरमुखान् प्रति शस्त्रपातः।।[12]

उस स्कन्द के उन्नत और विस्तृत ललाट में जो प्रकाश है उसे देखते ही शत्रुओं का संहार हो जाता है तब तारकासुर आदि के लिए शस्त्रपात की क्या आवश्यकता ?

उदेति खलु पिण्डकं यदपि हेमवर्ण महो –

दधेः सलिलतः परं तदपि वारिगर्भ महः।

महस्विनि विवस्वति स्थितिमुपेयुषी या प्रभा

प्रभास्वरवपुः स्फुस्तनुलता कलाऽग्नेर्हि सा।।[13]

संसार को प्रकाशित करने वाले दोनो सूर्य – चन्द्र में भी इनकी सत्ता तेज पुंज के रूप में विद्यमान रहती है।[14] दिन में जब प्रकाश बिखरा रहता है तब जिसे दिवाकर कहा जाता है और अस्त होने यानी घोर अन्धकार में छिप जाने पर जिसे निशाकर कहा जाता है। इसी प्रकार आकाश में अनेक वर्ण के जो तारे प्रकाशित होते है उनमें जो स्पष्ट रूप से प्रकाश दिखाई देता है उनमें भगवान कार्तिकेय अग्निरूप में विद्यमान रहते हैं।[15] तेजोमय दशों दिशाएँ इन्हे गर्भ रूप में धारण करती हैं। इसलिए इन्हे ' दशमुख ' पद से भी सम्बोधित किया गया है। दशमुख होते हुए भी ये रावण के समान नही है , ये तो प्रजा का कल्याण करने वाले हैं, धन – धान्य से पुष्ट करने वाले है।

दिशः खलु विभस्वरा दधति गर्भमेकं स वै
प्रकाशमयविग्रहो ननु भवान् हि नान्यः परः।
अतो दशमुखो भवान् भवति किन्तु नो रावणो
जगत्त्रितयरावणो, भवति रावणद्रावणः।।

भगवान स्कन्द इस चराचर जगत में गुहाशय रूप में विद्यमान है गुहाभाव को प्राप्त है , गुहय्तिगुह्य तत्व भी है , क्षराक्षर जगत के नियति बल्लभ है । ये अनुगुणात्मक विशेषता के धनी है।[16] इनके अद्भुत सौन्दर्य को देखने हेतु सुरबालाएँ दौड़ी चली आती है। इनके रूपमाधुरी के सामने साक्षात् कामदेव भी तिरस्कृत हो जाते है।[17]
इन्हे पर , अपर , परापर , परात्पर , अपरपर विभूतियों की परम्परा प्रिय है , इन सब में क्रीड़ा करते हैं।[18] बहुरंगी कलाओं के ज्ञाता होने के साथ ही साथ इनकी वाणी भी मधुर है। इसके साथ ही प्रजा के कल्याणार्थ सदैव तत्पर भी रहते है। ये शत्रुओं का विनाश उसी प्रकार करते है जिस प्रकार ह्रदय को आह्लादित करने वाला कलापों से युक्त रमणीय मयूर विषधारी सर्पों को विनष्ट करता है।[19] इन्हे देखकर सुरमाताओं के ह्रदय में वात्सल्य प्रेम जागृत हो उठता है। यह वात्सल्य सभी रसों में श्रेष्ठ है।

क्षरन्ति पयसां धराः सुरपुरन्ध्रिकाणामिमे
पयांसि ननु कंचुकद्वयनिरूद्धधारिण्यहो।
अहो न रसराजता श्रयति सिद्धिमीक्षावति
प्रियद्वयरसे तथाऽऽश्रयति सा यथा वत्सले।।[20]

वस्तुतः भगवान कार्त्तिकेय अष्टमूर्ति (पृथ्वी , जल , तेज , वायु , आकाश , पार्थिव शरीर , अग्नि , चन्द्र) हैं लेकिन सूर्य ही अग्नि है , तथा चन्द्र ही जल है इसलिए वह षण्मूर्ति के रूप में प्रसिद्ध है।[21] छठी मूर्त्ति उनकी अपनी चिति ही है जो परम शुद्ध तथा आनन्दस्वरूप है , उसमें प्रतिष्ठित गुह को अन्य से प्राप्त होने वाले प्रहर्ष , आनन्द , प्रमोद की चाह नहीं है।[22]

निगृह्य योगात् करणानि सर्वाण्यात्मस्थितानां परमस्तु हर्षः।
सदैव सौलभ्यययुतश्चकास्ति स एष योगेन समाधिभाजाम्।।[23]

योगाभ्यास से समस्त इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर आत्मस्थित हो गये आत्मास्थित व्यक्ति को परमानन्द की अनुभूति होती उन्हे वाह्य विषयों की इच्छा नहीं रहती है। उत्कृष्ट आनन्द में सदा विराजमान होने के कारण भगवान कार्त्तिकेय को प्रमोद आनंद की इच्छा नहीं रहती है। शिवपुत्र गुह सभी यमियों में अग्रगण्य है। उनकी गिनती कनिष्ठिका पर की जाती है।

सन्दर्भ ग्रन्थसूची

1. साहित्यदर्पण 3/30
2. कुमारविजयम 8/1
3. कुमारविजयम 8/12
4. कुमारविजयम 8/3–5

ISSN: 2348-1390
Impact Factor: 4.321 (IIJIF)

5. कुमारविजयम 9/1
6. कुमारविजयम 1/8
7. कुमारविजयम 1/23–24
8. कुमारविजयम 5/76
9. कुमारविजयम 1/27
10. कुमारविजयम 5/1
11. कुमारविजयम 5/34–38
12. कुमारविजयम 5/53
13. कुमारविजयम 3/24
14. कुमारविजयम 3/26
15. कुमारविजयम 3/27
16. कुमारविजयम 3/29
17. कुमारविजयम 3/32
18. कुमारविजयम 3/30
19. कुमारविजयम 3/30–31
20. कुमारविजयम 3/34
21. कुमारविजयम 6/1
22. कुमारविजयम 6/2
23. कुमारविजयम 6/3

❑❑❑